अनुवर्तन

अनुवर्तन

(श्री कन्हैयालाल सेठिया की राजस्थानी काव्य-यात्रा के
चयनित काव्यांशों का हिन्दी भावानुवाद)

मूल
कन्हैयालाल सेठिया
अनुवाद
भगवतीलाल व्यास



अंकुर प्रकाशन
ANKUR PRAKASHAN

I.S.B.N. 81-86064-10-9

मूल्य 50 रुपये

प्रथम संस्करण : 1994

आवरण : कलाप्रेमी

प्रकाशक : अंकुर प्रकाशन
13, पीपलेश्वर महादेव की गली,
माइयों की तलाई,
उदयपुर (राज०)-313001

मुद्रक : शांति मुद्रणालय
गली नं० 11, विश्वासनगर,
दिल्ली-110032

ANUVERTAN (Translation of Rajasthani Poems)
By Bhagwati Lal Vyas Rs. 50.00

शब्द-ऋषि
कन्हैयालाल जी सेठिया
को
जिनकी इन कविताओं
से ही मुझे वह
ऊर्जा-प्रेरणा मिली
जो इस अनुकृति का
कारण बनी।

अथ

हिन्दी-राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि-चिन्तक एवं रचनाकार श्री कन्हैयालाल सेठिया के काव्य ने मेरा मन अपने विद्यार्थी काल में ही मोह लिया था। तब से बराबर सेठिया जी को पढ़ता रहा हूँ, समझने की कोशिश करता रहा हूँ। उन्हें कितना समझ सका हूँ, उनकी कविता को कितना जान सका हूँ, कह नहीं सकता। पर यह कह सकता हूँ कि उनकी कविता मुझे उल्लसित करती है, आह्लादित करती है, प्रेरित करती है। यही वजह है कि मैं उनकी कविताएँ बार-बार पढ़ता हूँ। पढ़ी हुई कविताओं को समय के कुछ अंतर से फिर पढ़ता हूँ। मुझ उन कविताओं में से कुछ नये ही अर्थ अंकुराते से लगते हैं। इस तरह मैं एक अनिर्वचनीय आनंद से, एक व्याख्यातीत अनुभव से गुजरने का एक और अवसर पाता हूँ।

ऐसा ही हुआ जब उनका नया काव्य-संग्रह 'कक्को कोड रो ···' मिला। उसने पढ़ना शुरू किया। पढ़ते-पढ़ते मुझे लगा कि मुझे उनकी कई कविताएँ फिर से पढ़नी चाहिए जो उनके पुराने सग्रहों मे कभी पढ़ी थी। मैंने यही किया।

सेठिया जी की अठारह पुस्तकें हिन्दी मे और तेरह राजस्थानी मे प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अलावा चार अनूदित ग्रथ भी हैं। इसलिए मैं यह तो नहीं कहूंगा कि हिन्दी पाठक जगत् उनकी काव्य प्रतिभा से परिचित नही है फिर भी उनकी राजस्थानी कविताओ को पढ़ते समय बार-बार मुझे यह लगता रहा है कि इन कविताओं को बानगी रूप मे ही सही, हिन्दी पाठकों तक पहुँचना चाहिए। किसी परिचित-पहचाने कवि के शेप रचना-संसार से गुजरना पाठक को एक आत्मीय अनुभूति देता है, एक रस-सृजन करता है, बस, इसीलिए।

सेठिया जी की राजस्थानी कविता मे ऐसा क्या है जिसे न जानने से हिन्दी पाठक का कोई नुकसान हो जाएगा, यह सवाल अस्वाभाविक नही है। किन्तु यहाँ मैं इस सवाल का उत्तर नही दूँगा। मैं इसका उत्तर देने के लिए सक्षम भी नहीं हूँ शायद।

यहाँ राजस्थानी में प्रकाशित उनके आठ काव्य संग्रहों (लीलटांस, मीझर, सबद, सतवाणी, अघोरी काळ, दीठ, कक्को कोड रो···और लीक लकोळिया) से कुछ चुनिन्दा कविताओं का हिन्दी भावानुवाद प्रस्तुत करने का प्रयास है। चुनाव में यह दृष्टि नही रही कि ये कविताएँ सेठिया जी के राजस्थानी सृजन का प्रति-

निश्चित्व कर ही लें। सहज रूप से जिन कविताओं ने मुझे छुआ, झकझोरा उनको मैंने चुन लिया।

मैं यह मानता हूँ कि कविता का अनुवाद नहीं हो सकता। कविता क्या, किसी एक शब्द का भी अनुवाद नही हो सकता। प्रत्येक शब्द का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है और कविता अपने आपमें एक अद्वितीय सृष्टि है। सृष्टि का सृजन होता है, अनुवाद नहीं। फिर भी पता नही क्यो मैंने यह दुस्साहस किया है।

सेठिया जी ने जिस विराट भावजगत् को अपने राजस्थानी काव्य मे समेटा है वह इतना वैविध्यपूर्ण, सुरंगा और ऊर्जा संपन्न है कि शायद ही शब्द की जगह शब्द रख देने मात्र से उसकी प्रतीति हो सके। प्रकृति, मनुष्य और इन दोनो के बीच बँधा एक अदृश्य तार जिसे आप सज्ञा कुछ भी दे दें—आध्यात्म, लोकजीवन, समाज या और कुछ, वस्तुतः यही सेठिया जी की काव्य-सर्जना का मूल स्वर है।

सेठिया जी को मैं शब्द-शिल्पी नही कहूँगा। वे शब्द-ऋषि हैं। शब्द की गहनता और विराटता को जितना उन्होने जीया है, कम लोग जी पाते हैं। यही कारण है कि सेठिया जी की कविता में शब्दो का अपव्यय नही मिलेगा। न्यूनतम शब्द अधिकतम कथ्य, यही है कविता में सेठिया-शैली।

उनकी एक कविता है—'फरक'

'बन्द आँख मीरा
खुली आँख कबीर
भगती
जमना र
ज्ञान
गंगा रो नीर।'

'कक्को कोड़ रो…पृ० 42'

ऐसी कई कविताएँ हैं, उन कविताओ के सांस्कृतिक संदर्भ हैं, उनका आंचलिक रंग है, रस है, मिठास है—इस सबका अनुवाद कैसे हो…क्यों हो?

फिर भी जो कुछ हो गया है उसे आपसे लुकाना-छिपाना ठीक न होगा, यही समझ कर प्रस्तुत हूँ इस 'अनुवर्तन' के साथ।

यह प्रयास आपको रुचे-जँचे तो श्रेय सेठिया जी की काव्य-रचना को ही जाएगा क्योकि मूल तो वही है जहाँ से मैंने यह रस ग्रहण किया है और आज तक पहुँचा रहा हूँ। पात्र का कोई स्वाद नहीं होता न उसमे कोई रस होता है। रसधारी होता है पात्र में भरा पदार्थ। रसग्राही होता है पदार्थ का भोक्ता। पात्र तो इसी से संतुष्ट रहता है कि रस से उसका यत्किंचित संसर्ग रहा। यह संतोष कम नही है और यह मुझे मिला है।

—भगवतीलाल व्यास

क्रम

निराकार

प्रत्यक्ष को
प्रमाण की
क्या दरकार !
प्याज के
छिलके उतार
आकार में
निराकार !



लीलटांस : 23

सगुण-निर्गुण

मैं नहीं बजाता
मुझे बजाता है सितार
बँधी हुई है इसकी
झंकार से मेरी चेतना
जैसे दीपक की बाती से लौ
छूकर इसके तार
पकड़ लेती है गति
अंधी अँगुलियाँ
सुनकर इसकी धुन
सगुण बन जाता है
निर्गुण !



लीसटांस : 25

पश्चिम और पूर्व

लड़ाई कुदरत से
सभ्यता पश्चिम की
मैत्री-सभ्यता
पूर्व की
सूर्य जहाँ निर्बल है
चाहिए वहाँ
आँखों का उजास
जहाँ सबल है
वहाँ आत्मा का प्रकाश
पश्चिम की जिन्दगी
शाश्वत दौड़ने की
एक होड़
पूर्व की
रुक कर
सोचने का एक मोड़
इसी अंतर से
पश्चिम में
जनमते हैं युद्ध
और पूर्व में
बुद्ध !

□

लीलटांस : 45

रत्न-दीप

भले ही मार
तू फूंक लगातार
डाल इनके ऊपर
धूल बार-बार
न कजलाएँगे न बुझेंगे
ये रत्न-दीप
यदि तू करना ही
चाहता है
इनकी ज्योति
अदृश्य
तो बंद कर ले
अपनी आँखें
फिर खुलकर खेल
नहीं दिखेगी तुझे
तेरी छाया तक।



लीलटांस : 47

कविता

भाषा की क्षमता को
तौलने की तराजू है
कविता

शब्दों के गट्ठर में
चन्दन की लकड़ी है
कविता
सत्य है सौ टंच
न नयी है
न पुरानी है कविता
मनुष्य के हृदय में
दबी चिनगारियों की निशानी है
कविता
गूँगे का गुड़ है
उठा-पटक का
अखाड़ा नहीं कविता,
औषधि आत्मा की
मिट्टी की काया का
भाड़ा नहीं
कविता !



लीलटांस : 53

शब्द-अमृत

लेखक !
मत बना
कलम को
भोगी रसिक की बाँसुरी
निर्लज्ज चित्रकार की कूंची
यह तो है
माँ सरस्वती की
संजीवनी बूटी
प्रकाशित करती है
आत्मा की ज्योति
मिटाती है जिंदगी का द्वन्द्व
पहचान इसकी क्षमता
सस्ती कल्पनाओं
और स्थूल बिम्बों में
मत गँवा
इसकी नोक से झरता
शब्द-अमृत !



सोलदांस : 77

राम-नाम

सोने का पिंजरा
मखमल की खोल
रतन-कटोरे में
दाड़िम और दाख
सिखाया जाता है
तोते को
बोल मिठ्ठू—
राधेश्याम
हर शाम !
भूखे सूरदास ने
छोड़ दिए प्राण
रट-रट कर
यही नाम !



लीलटांस : 82

दूब

कोसों कोस पसर गई दूब ।
ताल-तलैया सब डेरों से मार्ग बना निकली
कोसों तक पसरी यह खूब !
पहली बूंद गिरे मेघों से
यह धरती का घूंघट खोले
दिखा अंगूठा, प्रबल प्रभंजन
की ताकत यह तोले
काँटों, राहों, गढ्ढों और गुफाओं में घुस निकली दूब
कोसों कोस पसर गई दूब !
धूप कहे गुस्से में इससे —'यह इतराती खूब ।'
कोसों कोस पसर गई दूब !
ज्यों-ज्यों पशु इसे चूंटते
प्रेम सहज उमगाए
पीड़ा से नीली पड़ कर भी
मन्द-मन्द मुसकाए
जीवन के उल्लास प्रेम में मृत्यु भुलाती दूब
इसके आगे मरदों का मरदानापन भी झुकता खूब
कोसों कोस पसर गई दूब
वट और केर खेजड़ा
वन में सब हैं इसके भाई
सबके चरण-स्पर्श करती यह
कैसी श्लाघ्य नम्रता पाई
वन सहिष्णु यह बड़ों बड़ों के साथ निभ गई खूब
सदा सुहागन, यह बड़भागन, जन्म सुधारे दूब
कोसों कोस पसर गई दूब !



मींझर : 24

गीत—पखेरू

मुक्ति मिलेगी, जीव ! बाद में,
पहले बन्धन सहना होगा।
लट्टू को गति कैसे मिलती
यदि न बँधाता वह गल-डोर
बाण तभी नभ तक पहुँचा है
बँधा प्रथम अंगुली के पोर
डूबा जो आकंठ कीच में
कमल वही कहलाया
मुक्ति मिलेगी जीव ! बाद में
पहले सह बंधन-माया।
बँधी रही जो अगन ज्योति से
वह सूरज के पास गई
जो चिनगारी छिटकी लौ से
जल कर केवल क्षार हुई।
ग्रीवा-बंधन सहकर ही
घट अंधकूप से अमृत लाता
चखता वही मुक्ति का फल
जो पहले खुद बंध जाता
बैठा नीर हिमालय तब भी
फिर सागर को आता
मर्यादा में बँधे बिना भी
स्वर्ग कहीं मिल पाता ?
गीत-पखेरू, सुर की सांकल
तुझे पहनना होगा
मुक्ति मिलेगी, जीव ! बाद में
पहले बंधन सहना होगा।
□

मीमर : 29

सबद

धरती कागज, हल कलम
वर्षा-मसि का नीर
बोये अक्षर बीज के
शब्द उगे गंभीर।
1

मत काँटों से झगड़ तू
कर काँटों की बाड़
मित्र बनें, रक्षा करें
रिपु से, पुर, घर-बार।
7

शूल चुभा पग में उसे
बाहर करते हाथ
अलग-अलग हैं धर्म पर
संवेदन में साथ।
9

विष दिखता, अमृत नहीं
हारे मूढ़ टटोल
ज्ञानी जाने मर्म को
विष अमृत की खोल।
10

—सबद

रस से पक कर फल गिरे
पुष्प झरे रसहीन
पहला सुख से तृप्त हो
दूजा दुख से क्षीण।
12

कभी न जीवन-मृत्यु पर
चिन्तन करते संत
आठ प्रहर चौंसठ घड़ी
उनमें रमे अनंत।
21

पर्वत पर घन बरसते
जल का ओर न छोर
बूंद एक भी ना रखे
पर्वत कभी बटोर।
25

नहीं धरा के शूल सब
कोई सका बुहार
पहन पाँव में जूतियाँ
कर ले रस्ता पार।
26

व्यर्थ झर गए अश्रु सब
क्यों सोचें यह बात
ये गीतों के बीज थे
फूटें रात-बिरात।
37

संवत्, युग, महीना बरस
व्यर्थ गिने दिन-रात
क्षण की कर लें साधना
लाख टके की बात।
57

—सैवद

क्षणजीवी है पुष्प पर
बांटे सहज सुवास
दीर्घ आयु है शूल को
रहता सदा उदास।
69

हिम गल-गल गंगा बनी
गंगा बना समन्द
सागर से फिर घन बने
रचे बूंद के छंद।
89

बूंद स्वयं में सिन्धु है
सिन्धु स्वयं है बूंद
परम मर्म प्रत्यक्ष है
हट जाए यदि धुंध।
36

समदर्शी चन्दन सरिस
मिलते कभी-कभार
काटे जो करवत उन्हें
दें सुगन्ध उपहार।
92

महिमा भारी शब्द की
शब्द ब्रह्म है आप
साध शब्द को रे मनुज
मिटेंगे तीनों ताप।
99

शब्द-हंस ऊपर उड़ा
सुर के पंख पसार
गगन-ब्रह्म से जा मिला
उपजा अनहद सार।
☐ 109

—सबद

सतवाणी

दृष्टि सधे तो सत सधे
भेप निरा छल छन्द
धरे हथेली सूर्य को
देख न पाता अन्ध।
4

स्याही, कागज, कलम जड़
अक्षर हैं निष्प्राण
किन्तु जनक है शब्द का
संवेदनमय प्राण।
11

भटका रीता कुंभ ले
लिये तृपा की दाह
चरण थके तब सुधि जगी
घर का कूप अथाह।
25

सेवा-पूजा व्यर्थ हैं
व्यर्थ आरती ढोल
मन-अम्बर में वासना
उड़ती पांखें खोल।
36

—सतवाणी

अगर चाहता मुक्ति तो
तज पर का आधार
जा तू अपनी शरण में
अशरण यह संसार।
37

प्रवचन देते अन्य को
पर वहरे निज कान
कथनी कर करनी करें
उनके वचन प्रमाण।
45

जो रहता निज भाव में
है वह सहज स्वभाव
स्थितप्रज्ञ नर के लिए
कोई नही अभाव।
75

शास्त्र वन गए शस्त्र जव
शब्द वन गया द्वन्द्व
कर वैठी तव चेतना
जड़ता से अनुवध।
92

रीता दीपक शब्द का
नही भाव का नेह
बिना दृष्टि की तूलिका
जगमग करे न गेह।
175

वारिधि वड़वानल जले
दावानल कांतार
रागानल से जल रहा
यह सारा संसार।
189

—सतवाणी

फूक दिया दीपक वुझा
था तेरे आधीन
पर वूझता सूरज नहीं
जो शाश्वत स्वाधीन।
232

दृष्टि बड़ी है सृष्टि से
भू से नभ विस्तार
स्वयं वड़ा मानव नही
उसका बड़ा विचार।
249

धर्म आचरण से सधे
चाहे हो न प्रचार
जड़े वृक्ष की भूमि में
करतीं स्वतः प्रसार।
251

अंधे दर्पण में नहीं
दिखता ज्यों आकार
जब तक मन में मैल कब
सत्य हुआ साकार।
314

नहीं मुक्ति का पंथ है
बंधी-बंधाई लीक
अनुसरण करता नही
चलता संत अलीक।
□ 315

—सतवाणी

कब लेगा जन्म ?

देख कर
गाँव की सीमा पर
हड्डियों का हिमालय
मुझे स्मरण हो आए
प्राचीन युग के राक्षस
कहाँ मिलेगा
अब वह विश्वामित्र
लाये जो मांग कर
दशरथ से
राम और लक्ष्मण
कौन मारे
इस काल के
कवंध को
भूख की ताड़का को ?
गिनती है
अंगुलियों पर
बिलखती हुई प्रजा
कब जनमेगा
फिर राम का
अवतार ?


अघोरी काळ : 15

अकाल राजा

जी में आता है
जब
निकल पड़ते हैं
अकाल राजा आखेट को
छोड़ कर
हाथियों को
जंगल की सीमा पर
उतर जाते हैं
हाथी के हौदे से
फिर चलते हैं पैदल ही
ताकि न हो सकें
सावधान
बेचारे भोले जीव
करते है घात
दिन और रात।
कहते हैं उधर
तृप्त नेता
बीत गया सामंती युग
नहीं रहे राजा-नवाब
भोगदार-ठाकुर
पर कैसे मान ले
इस सफेद झूठ को
मारवाड़ की प्रजा
जहां तक
जीवित फिरता है
राजा अकाल !

□

अघोरी काळ : 17

अदृश्य अकाल

करता है अदृश्य वार
कायर अकाल
नहीं काटता सिर और धड़
नही वहाता रक्त
रखता है साबुत
मनुष्य-देह
किन्तु काट देता है
चुपके से
अन्न-पानी के पुतले
जीव का रस स्रोत।
नही जोड़ सकता
इस कटे स्रोत को
किसी बूटी का लेप
कोई संजीवनी-घूंट
मरते हैं सूख कर
बेचारे देहधारी
बन जाता है सुरंगा
वन-प्रांतर मात्र ईंधन।
यदि बचा सकती है
इस मृत्यु से कोई
तो वह है
इन्दर बाबा के
बादलों की झारी
अमृत-धारी
अन्यथा निरर्थक हैं
टोने-टोटके, झाड़-फूक
औषधि-उपचार!



अघोरी काळ : 24

सचाई

जिन्दगी की
सचाई भूख
मिथ्या तृप्त लोगों की
जात-पांत
छुआछूत
हुआ समाप्त जब
युद्ध महाभारत का
खोल कर
आंखों की पट्टी
रोती-बिलखती
गांधारी
पहुंच गई कुरुक्षेत्र में
ढूंढ़ने लाशें
अपने पुत्रों की
थक गई
हो गई निढाल
मौत के जंगल में
लग गई जबरदस्त
भूख गांधारी को
जैसे गिर पड़ेगी
बेबस काया
तभी दिखा सामने
फलों से लदा
आम्र-वृक्ष
पास पहुंची
पंजों के बल खड़ी हो
पसारा हाथ

किन्तु नहीं टूटा फल
तब लाई घसीटकर
एक मुरदा
उस पर खड़ी हो
तोड़ा आम
तृप्त हुई रानी
यह नहीं है कोरी कहानी
कहावत सच है
भूख होती है बड़ी सयानी।



अघोरी काळ : 36

इक्कीसवीं सदी

शेष होती बीसवीं सदी के
मोड़ पर दिखा
ऊंट के-से डग भरता
आता अकाल
चट हो गया मैं
एक वृक्ष की ओट
किन्तु पूछ लिया एक
भोले हिरन ने—
"महाशय अकाल जी !
आज किधर पधारने का
किया है विचार !"
बोला अकाल
फैला दूंगा सर्वत्र,
अपना जाल
नहीं चलने दूंगा
किसी की
सुना है देश को
इक्कीसवीं सदी में
ले जाने की
चल रही है बात
यदि नष्ट न कर दूं
यह कल्पना
तो मुझे मत कहना अकाल !
पड़ गए नेताओं की

अक्ल पर पत्थर
क्या दे सकेंगे
भूखों को अन्न
प्यासों को पानी
ये कंप्यूटरों के अंम्बार ?
करा दूंगा
गुद्दी में आंख
काट कर फेंक दूंगा
सपनों की पांख
पड़ेगी जब उड़-उड़कर
माथे पर रेत
तब इन प्रमादियों
को आएगा चेत।



अघोरी काळ : 46

कामगार

क्या होगा कहने से
थकान से दुखता है शरीर ?
भले ही न बची हो
काम करने की हिम्मत
किन्तु तुझे लगती है
अब भी भूख और प्यास
कंधे उठाकर लाना पड़ेगा
पानी
करनी होगी मजूरी
अन्न के दानों की खातिर
कहां है तेरे पास
बैठे-बैठे खाने के लिए
पैसे ?
यदि तू जानता होता
हेराफेरी
जेब काटना
या होती कोई
ऊपरी कमाई
तो निभ जाता
तेरा प्रमाद
किन्तु नहीं है तुझ में
कोई भी कुटेव
यही है एब
पड़ेगी तुझे भोगनी

नेक-नीयत होने की सजा।
क्या होगा
ताकने से आकाश
उठ और सुलगा
अपने कान में खोंसी हुई
अधजली बीड़ी
खींचकर लम्बा कश
लपेट ले अपना
चीर-चीर गमछा
खड़ा हो जाकर
गांव की चौपाल पर
दूसरे कामगारों के साथ
जब आता दिखे
कमठाणे का वड़ा
ठेकेदार
आगे वढ़कर जोड़ना हाथ
तब पड़ेगी उसकी
नशे में धुत नजर
तुझ पर!
□

दीठ : 21

निज विवेक में जाग

मैं ही कारण
मैं ही कर्ता
मैं विकार
अविकार
मैं ही बन्धन
मैं ही मुक्ति
अन्य कौन भरतार ?

☐

यदि बरसाऊं
अपने ऊपर
अपनी करुणा-धार
मिटे देह का ताप
और हो
निज आत्मा-उपकार।

☐

ज्यों दर्पण में
दर्शक को दिखती
अपनी ही छाया
वैसे ही निज राग-द्वेष की
अन्यों में लखती प्रतिच्छाया

☐

मन विवेक में जाग
अगर तू चाहे इसे
अनुभव करना
नहीं भटककर तुझे मिलेगा
कहीं सत्य का
निर्मल झरना !

☐☐

दीठ : 39

समझाना

मुझे पता है
जुल्म और भूख
की मार से
बिलकुल
सुन्न हो गई है
तेरी चमड़ी
तभी तो
मैं काटता हू
चिकोटी
अपने शरीर पर
शायद देखकर
मुझे लहूलुहान
समझ जाए तू
मेरी कविता का अर्थ।



दीठ : 44

शेष कविता

दृष्टि हुई विमुख
खो गई पहचानें
हो गए एक-से
जाने-अनजाने
अब तो निकालते हैं काम
पड़ोसी कान
बंध गई शब्दों से
ऐसी पहचान
हो गए निरर्थक
कलम और कागज
बनाता हूं निरर्थक
पंक्तियां-आकृतियां
कठिनाई से छूटती है
पड़ी हुई लत
जिन्दगी का
दूसरा नाम है आदत।

□

दीठ : 51

समय

कोई नही बच
सकता
कभी समय की
आंख से
उसकी दृष्टि मे
तमाम पैर और पंख हैं।
वही बैठा हुआ है
अबोले बीज मे
हसते फूल में
रुष्ट शूल मे।
उसके लिए
कोई पर्वत
ऊचा नही
कोई सागर गहरा नही
उसी के अदृश्य हाथो में
सृष्टि रूपी ऊंटनी
की मोहरी है
वार्तालाप करते
पथिकों को
नही सुनाई पड़ती है
उसकी टिटकारी।



अनुभूत

कर सका है
कौन किसी का भी
निस्तार !
नहीं गिनी जा सकतीं
समुद्र की लहरें
आकाश के तारे
देह की रोमावली
मन के विचार !
गणित की शिक्षा ने
बांध दी है पुद्गल से
दृष्टि
पंचभूत ने
कर दिया है
चेतना को विभ्रमित
यदि चाहता
अनुभूत करना
ब्रह्माण्ड
कर ले दृष्टि को
अन्तर्मुखी
बन जा सूरदास.



कबको कोड रो···12

पीड़ा का अमृत

मथ कर
मन का समुद्र
निकाला
शब्द-घट में
पीड़ा का
अमृत
नहीं भागे पीछे
देवता और राक्षस
इस संजीवनी का
स्वाद
जानती है
सिर्फ
मनुष्य की
संवेदना !



ककको कोड रो···13

कविता

मर गई कल
भूख से हाथापाई
करती
बेचारी कविता
ले गई उठाकर
लावारिस लाश को
नगर-निगम की
मुरदा-गाड़ी
आज
समाचार-पत्र में
पढ़ा—
रखी गई है
ग्राम-प्रधान के
सभापतित्त्व में
विराट
शोक-सभा।



कक्को कोड रो'''38

भूख

देख कर
धरती पर
बिखरे दाने
समेट कर पंखों को
आकर बैठ गया
पक्षी नीचे
भूख से बड़ा
नहीं है
आकाश।



कक्को कोड रो…40

दिन-रात

1

तम की देह विशाल बहुत है
पर है कच्ची छाती
लेती काट चिकौटी निर्भय
तमक दीप की बाती।

2

सिल अम्वर, बट्टा है चंदा
ये बदाम से तारे
घुटे चांदनी की ठण्डाई
रस आपूरित सारे।

3

तम-रावण के वंशज हैं ये
भक्त विभीषण तारे
एकाकार हुए सूरज से
पौ फटते ही सारे

4

नभ सिगड़ी तारे अंगारे
तिमिर तवा धर ऊपर
समय—रसोया सेंक रहा है
दिवस-चपाती उस पर।

5

तिमिर-वृक्ष पर लदे हुए हैं
तारों के फल सुन्दर
मावस-मालिन के आते ही
चोर भागता निशिकर।

6

नखत बिन्दुओं से कर गोली
सूखी माटी तम की
गढ़ी समय के कुंभकार ने
फिर आकृति सूरज की।

7

रगड़ गगन-माचिस से तूली
उषा की सुलगाई
सूर्य-दीप की बुझी हुई लौ।
ऋतु ने पुनः जलाई।

8

जनमे माँ-मिट्टी से नन्हें
ये दीपक अवतारो
लौ तरकश से बाण खींच कर
रात ताड़का मारी।

9

तम गढ़ की प्राचीर वज्रवत
पर जाता खुल भेद
जब कर देती परकोटे में
दीपक की लौ छेद।

10

तम हाथी है, तारे कुत्ते
भौंक भागते डर कर
दीप-महावत लौ-अंकुश से
रखता इसको पथ पर।

11

घुसता तिमिर बलात घरों में
नहीं मानता, हठ कर
चपत लगाकर दीपक की लौ
करती उसको बाहर।

12

गहन निशा यमुना-सी श्यामल
दिन गंगा का पानी
नेह भंवह में डूबी मीरा
तिरा कबीरा ज्ञानी।

13

अम्बर छलनी महाकाल की
तारे छिद्र अशेष
तम कचरा छन रह जाएगा
केवल दिन तब शेष।

14

है द्वितीया का चाद चॉक सा
तमस स्लेट के ऊपर
समय पढ़ाकू लड़का लिखता
सुघड़ नखत के अक्षर।

15

दिनकर कंत भटक जब लौटा
खोल उषा ने द्वार
दिया काल को खील बताशा
व्यक्त किया आभार।

16

देख द्वार पर आया तम को
लौ का तिलक लगाया
दीपक की करुणा से फीका
मावस-मुख हो आया।



कक्को कोड रो-64-66

कौन

कौन
फूल में
विकसित होता है
और झरता है ?
कौन फल में
पकता है
और गिरता है ?
कोई कहता है
बीज
कोई कहता है
वक्त
किन्तु मुझे लगता है
यह अनन्त
का अनादि
खेल ।



कक्को कोड रो-86

सत्य

टूट गया
आँखों का भ्रम
अब तो लगता है
यह संसार
एक अनहोनी
जिसमें
निरर्थक है
सोचना
व्यवस्था की बात
चलना पड़ेगा
नारे उछालती
भीड़ के रेले के संग
जिसमें
कोई नहीं समझता
किसी को भी
पहचानने की जरूरत।

□

कक्को कोड़ रो-92

सन्दर्भ

यदि नही जानता तू
चित्र के साथ
जुड़ी हुई कथा
तो तुझे लगेंगे
ऊंट पर सवार
ढोला और मारू
कोई रास्ता चलते राहगीर,
नहीं ठहरेगी
जरा-सी देर भी
उन पर
तेरी अपरिचित दृष्टि
वह सरक कर झट
टिक जाएगी
उस फूल के चित्र पर
जिसकी मीठी गंध
तेरी सांसों को
याद है।



फक्को कोड रो-94

आलोक पुरुष

कहा पूनम की
रात को
दीवट पर बैठे
निपट उदास दीये ने
अब तू सोच ले
मानिनी
तेरा भाग्य !
कल से ही
बढ़ने लग जाएगी
मेरी कुम्लाई हुई ज्योति
मेरी प्रिया अमावस के आगमन तक
बन जाऊंगा मैं ही
इस अंधकारमय धरती का
आलोक पुरुष !



कक्को कोढ रो-97

मन : चार कविताएँ

मन-1

रहता है
बेचारे जीव के
साथ लगा हुआ
कोई न कोई टंटा
तोलता है
जिन्दगी की
तराजू पर
वासना के बाटों से
कभी सुख
कभी दुख
नहीं रहने देता
विचार-डंडी को
सम
मन वणिक।

□

सीक लकोळिया-10

मन-2

जब नहीं हैं
स्थिर
पानी, पवन
धरती, अगन
तो कैसे स्थिर होगा
चंचल मन ?
नहीं छोड़ता वह
अपना धर्म
स्थिर केवल
शून्य गगन
जो है सृष्टि का कारण
मान उसी को
इष्ट
बन जाएगी
आत्मा परमात्मा ।



लीक लकोलिया : 12

मन-3

उड़-उड़कर
मत बैठ
गंदगी पर
मन की मक्खी
बन मधुमक्खी
चख
आत्मा के कमल का
अछूता मधु !



लीक लकोळिया : 18

मन-4

करता रह
क्षण-क्षण घोंचा
मत होने दे
निस्संक
नहीं तो यह
जनम का यायावर
फिरेगा निरुद्देश्य
करेगा अपनी मनमानी
देगा दुःख
यदि चाहता है तू
यह चले रास्ते पर
भरता रह चिंतन की चिकौटियां
उधेड़ता रह इसकी बखिया
तभी मानेगा
अंकुश
यह सिरफिरा ।



लीक लकोळिया : 49

उधारी पूंजी

क्या होगा
इकट्ठा करके
ईंधन
जब नही है
तेरे पास
एक भी चिनगारी ?
फिर व्यर्थ है
सिर पर
लकड़ियों का भार
यह नही है
अपने आपमे
कोई प्रकाश ।
ऐसे ही पढ़-पढ़कर पोथे
रह गए बिलकुल थोथे
जिनके पास केवल
शब्दों का भंडार
हो सकता है
उनकी दुकान हो ऊची
पर कब करती बरकत
लोगों से उधार ली हुई पूंजी ?



लीक सकोळिया : 15

कविता

क्या होगा
लेकर बैठने से
कागज और कलम
बिना संवेदना
नहीं होता सृजन
मुझे पता है
तुम्हें है तमाम छंदों का ज्ञान
तुम्हारे पास है
अखूट शब्द-भंडार
किन्तु कविता
नही है कोई कारीगरी
यह तो है अबोली
अंतस की गहरी पीर
जो आती है बाहर
जब मथकर
हृदय समुद्र
बन जाती है
आदमी की आत्मा
परमेश्वर।

☐

सीक लकोळिया : 53

युद्ध

लड़ता रहा है
आदिकाल से
मनुष्य
युद्ध
किन्तु बदलते रहे हैं
कारण
पहले लड़ती थी
शरीर की भूख
अब लड़ती है
मन की भूख
पहले योद्धाओं का
सच्चा नारा था
जय
अब योद्धाओं का
मिथ्या नारा है
शांति।



लीक लकोळिया : 60

रोटी

सूरज
चांद
धरती
सब
रोटी की आकृति के
तमाम गाजे-बाजे
महोत्सव उत्सव
रोटी के साथ
कौन है ऐसा
माँ का जाया
जो रोटी को ललकारे?
रोटी
राम से बड़ी
इस सत्य को
सब स्वीकारे।



लोक लकोळिया : 104

मैं

मुझे नहीं है
अपने बारे में
कोई वहम !
मैं समुद्र की
एक बूंद
गगन का
एक तारा
मिट्टी का एक कण।
था बिलकुल
निष्कपट मेरा बचपन
निश्चित पा यौवन
अब बुढ़ापे में
नही चाहिए
कोई विशेषण
मुझे संतोष है
मैं जिया
एक साधारण जीवन
मुझे नहीं है किसी की प्रतीक्षा
मेरी प्रतीक्षा करती है मृत्यु !



लीक लकोळिया : 106

प्रलय

नहीं रहा अब
जिन्दगी में मिठास
कहाँ है नयनों में प्रेम
उछालते हैं सब
एक दूसरे पर रेत
लगता है हर एक को—
आ पड़ा है
असंतुलित भार
कैसे पड़ेगा पार ?
कहाँ लेता है कोई विश्राम ?
चलता है भीड़ का रेला
कौन सुने किसी की पुकार ?
करेगी अब अघाई धरती किनारा
लाँघेगा संतापग्रस्त समुद्र
अपनी कारा
डूबेगा हिमालय
रहेगा अनडूबा केवल अम्बर
लुप्त हो जाएगा सृजन-बीज
नहीं मिलेगी अबकी बार
मनु को कोई शिला
कोई श्रद्धा
मुझे तो लगता है
होगी अब सृष्टि के
किसी अन्य पिण्ड में
फिर नव-रचना।



लीक सकोळिया 107

ढलता दिन

बिलकुल उदास
आकर बैठ गया
सरोवर के तट पर
ढलते दिन का उजास
घड़े भर-भर कर ले जाती
पनिहारिनों को देख कर
उसे याद आ गई
अपनी घरवाली
उड़ गए दाना-पानी कर
अपने-अपने घोंसलों की ओर
सारे पक्षी
लौटने लगे ग्वाले
पशुओं को हांकते
बातें करते
गोधूलि वेला होते ही
जल गया
बाला जी के देवालय का
चौमुखा दीपक
नये प्रकाश को
जन्म लेते देख
मरते उजास की आंखों में
छलक आए आनंद के आंसू
तारों के मिस !



मीक सकोळिया-74

पीड़ा

लगता है बिना पीड़ा के
जीवन
बिलकुल बेस्वाद
चाहिए कलेजे में
कोई न कोई दर्द
यदि अस्त नहीं हो
सूर्य
तो न लिख सके रात
तारों की कविता
यदि नहीं छायें
काले बादल
तो कैसे रचे नभ
इन्द्र धनुष ?
रखता है हरी-भरी
सृजन-लता को
अनचाहा दुख
नहीं तो निगल ले
चेतना की संवेदना को
सुख का दैत्य !



लीक लकोळिया-111

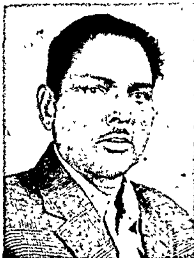
सर्वहारा

जिनके पास
नहीं है
रोटी और बिछौना
कैसे रहने देंगे वे
औरों के ऐश्वर्यपूर्ण साज-सामान ?
नकारेगी जो व्यवस्था
मनुष्य की
मूलभूत आवश्यकताएं
मनुष्य की जिजीविषा
ललकारेगी उसे
दण्ड और दमन
बन जाएंगे
आग में घी
जीवन करेगा
मृत्यु का वरण
जीवन के लिए
जुड़ जाएंगे फिर
कुछ और पृष्ठ
अधूरे इतिहास में
ताजा रक्त से रंगे हुए।

□

लोक लकोळिया-67

□□



भगवतीलाल व्यास

जन्म—1941 गिलूण्ड — (राजसमन्द) (राज०)

शिक्षा—एम ए. (हिन्दी), एम. एड.

लेखन— सन् 1956 से—कविता, कहानी, निबन्ध, व्यंग्य आदि विधाओं में।

व्यवसाय—अध्ययन—अध्यापन।

संप्रति—प्राध्यापक (हिन्दी एंव शिक्षा) राजस्थान विद्यापीठ, लोकमान्य तिलक—शिक्षक महाविद्यालय, डबोक (उदयपुर)

प्रकाशन—सूरत लीलती घाटियां (कहानी—संग्रह) 1976, शताब्दी निरुत्तर है (कविता—संग्रह) 1977, फुटपाथ पर चिड़िया नाचती है (कविता—संग्रह) 1984, अणहदनाद (राजस्थानी कविता—संग्रह) 1987, शिखर की पीडा (कविता—संग्रह) 1989, पौ बारह पच्चीस (व्यंग्य—संग्रह) 1983, मौर के गीत (बाल—साहित्य), मौसम के गीत (बाल—साहित्य) 1992, आलपिनो का आसन (व्यंग्य—संग्रह) 1993, अगनी मंतर (राजस्थानी कविता—संग्रह) 1993।

पुरस्कार—1983 में राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 'फुटपाथ पर चिडिया नाचती है' काव्य—सग्रह पर सुधीन्द्र पुरस्कार। 1988 मे केन्द्रीय साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा 'अणहदनाद' काव्य—संग्रह पर राजस्थानी भाषा का राष्ट्रीय स्तर का पुरस्कार। 1992 राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 'परदे के आगे परदे के पीछे' (व्यंग्य—कृति) को कन्हैयालाल सहल पुरस्कार।

सम्पर्क—35, खारोल कॉलोनी, फतहपुरा, उदयपुर (राज०) 313001